

कवि का परिचय

“इस विपन्न राजनीतिक मकट और सक्रांति-काल में ‘सरोज’ ने अपनी ‘कला’ द्वारा देश और जाति की जो सेवा की है ‘प्रताप’ उमका प्रबल साक्ष्य रहेगा।”

—‘प्रताप’ कानपुर

‘कविता में सरलता और सजीवता ‘सरोज’ की विशेषता है। हिन्दी-साहित्य के भावी उच्च प्रामाद के उन्नत भरोसे से मैं उनके तीव्र दृष्टि कोण को देखने व लिये उत्सुक हूँ।”

—सुरवि बालकृष्ण राव

(गू० पू० प्रेस-सलाहकार,
यू० पी० सरकार)

“नवयुवक कवि ‘सरोज’ की सरल और सजीव रचनाओं में एक नवीनता के दर्शन होते हैं। मुझे पूर्णशा है कि शीघ्र ही वे साहित्य में अपना निराला स्थान सुरक्षित कर लेंगे।”

—राष्ट्र कवि मोहनलाल द्विवेदी

‘सरोज’ की रचनाओं में सजीवता सरलता और सवेदन शीलता का पुट विरोध रहता है। उनकी वाणी को व्यापकता और प्रजाहमयो छद्म योजना सहदयों के तीर सी लगता है।”

—विहदवर प० रूपनारायण पांडेय

(बाधुरी-सम्पादक)

‘सुकवि ‘सरोज’ ने अपनी कुछ नवीनता अपनी शैली और अपना निरालापन है। २० वीं सदी का विकासो-मुख युग अपनी श्रोजन्मी रचनाओं की पक्षि-पक्षि में मौकना हुआ दीख पड़ता है।”

—सुरवि गोपालसिंह नैपाली

फिल्मिस्तान मलाह चाम्बे।

‘देश और जाति के प्रति सन्धे सवेदन शील और बफादार कला कारों में सुकवि ‘सरोज’ का अपना एक स्थान है।”

—कविवर पं० पद्मनाभ मालवीय

वर्द्धमान साहित्य मंदिर का प्रथम पु०

शेली

(कविता मग्नद)



रचयिता

श्री शिवसिंह 'सरोज'

{ प्रथम बार
सन १९४७ ई० }

सं० २००१ वि०

{ अजिल्द १॥॥
सजिल्द २॥॥ }

प्रकाशक—

प्यागाम जैन,

अध्यक्ष—

वर्द्धमान माहित्य-मंदिर

अमीनुदौला-पार्क

लखनऊ ।

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक—

वर्द्धमान प्रेस,

अमीनुदौला पार्क

लखनऊ ।

भाई देवेन्द्रप्रताप तलवानी

और

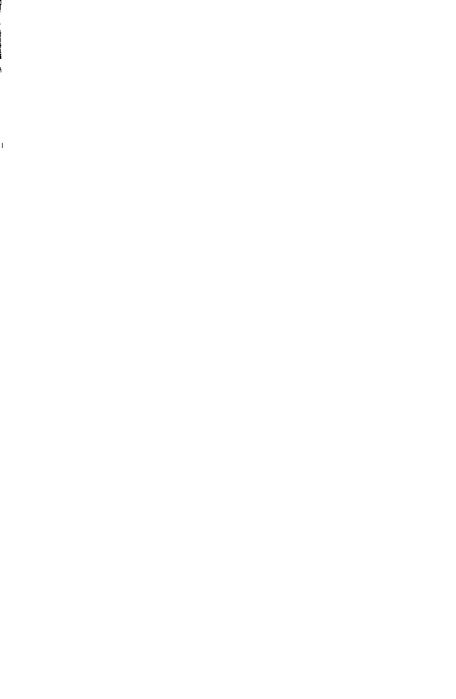
बहिन प्रेमलता तलवानी

को



'सरोज भद्रा'

(अ)



प्रकाशकीय

'रोली' हमारे प्रकाशन का प्रथम प्रयास है। 'रोली' और उसके कवि के विषय में मेरे द्वारा कुछ कहना व्यर्थ है जब कि पाठक स्वयं उससे भली भाँति परिचित हैं।

मैं स्वयं कवि की सरल एवं सजीव राष्ट्रीय रचनाओं से बहुत ही आधिक प्रभावित हूँ। मेरी यह प्रबल इच्छा थी कि उनके प्रकाशन से ही मैं अपनी सस्था का श्रीगणेश करूँ। मुझे हर्ष है कि मेरी अभिलाषा पूर्ण सिद्ध हुई।

पुस्तक आपके सामने है। 'सरोज' जी की अनुपस्थितियों के कारण इसके प्रकाशन में ही विलम्ब नहीं हुआ परन्तु स्थान-स्थान पर भारी अशुद्धियाँ भी रह गई हैं—उनके लिये मंच में मैं लज्जा-वन्त हूँ।

मुझे पूर्णांशा है कि साहित्य सभार अपने तरुण-कवि की कृतियों का समादर कर मुझे प्रोत्साहन देगा।

भवदीय—

दयाराम जैन

अध्यक्ष—

वर्द्धमान साहित्य-मन्दिर,
अमीनुर्रौला पार्क लखनऊ।

‘रोली’ का रंग

‘रोली’ की अधिकांश रचनायें उस नाञ्जुष परिस्थिति का प्रतिनिधित्व करती हैं जब संसार के कोने कोने में भीषण सामाजिक दुर्दमनीय दानवता का क्रूर-प्रवृत्तास, स्वार्थपरता का ताडव नर्तक और मानवता के महानाश का चक्र चल रहा है। इसी युग विशेष में भारत की राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक स्थितियाँ भी अपना विशेष महत्त्व रखती हैं। अगस्त १९४३ के दिल-दहलाने वाले दरय नेताओं की गिरफ्तारियाँ नागरिक स्वतंत्रों का अपहरण, भीषण दुर्दमन बंगाल का अकाल, जापानी आक्रमण और राजनीतिक गत्यचरोध सबके सब एक बारगी सुलाम हिंदुस्तान की मुक्ती रीढ़ पर आ कूदे। ऐसी स्थिति में कोई भी सवेदनशील कलाकार उक्त दुर्घटनाओं के चक्र में पड़ चुप नहीं रह सकता था। लेखक ने कलम पकड़ी, चित्रकारों ने तूलिका उठाई, विचारकों ने दिमाग लढाये और शूरमाओं ने शक्ति महेजी। सबके सब उसी ओर चल पड़े —

‘जिस ओर लड़पते हैं लागों औंलों में भर भरकर पानी,
जिस ओर वेदना, घट करके स्वयमपि बन जाती है वाणी।’

कोई भी सचेतन कलाकार ऐसी नाञ्जुष स्थिति में कोरे अध्यात्म अथवा निर्जीव भावना की रगीनियों में ही उलझा नहीं रह सकता था। सबने अपना-अपना कर्तव्य निभाया। यह ऐसी स्थिति थी जिसमें कलाकार का हृदय स्वयं ही प्रगति की ओर प्रेरित हो उठा और अनायास ही उसके मुरद से जनता की वाणी मुखरित हो उठी। इस सकटापन्न स्थिति में आदर्श और प्रगति के बीच कोई खोदने वाले ही अकर्मण्य बने रहे। उन्हीं के प्रतिक्रियावादी प्रयास में वह प्रकाश नहीं आ सका जिसके सहारे युग का जर्जर मानव दो-चार

इस युग की ओर चल मके। यह युग त्याग, बलिदान और आत्म संयम का युग है। इस युग के व्यक्ति के विनाश में ही मगष्टि की अनुभूति अवर्धित है। कलाकार को भी अपने फोगल स्वर सितार पर भैरव राग गाना हा पड़ा। फूलों का दामन छोड़ शूलों का तीखापन आज़माने र लिये उसे वियश होना पड़ा। इस युग के कवि का कौराल तीव्र संवेदन शीलता के आधार पर प्रणीत कला द्वारा मर्दित जनता को प्राण, प्ररणा और धन प्रदान करने में ही है। आज की 'कला का उपयोगिता (देखिये प्रष्ट चार और पाँच) आज की मरी हुई सद्वृत्तियों विकासो-मुखी भावनाओं और—मुक्ति-मगानुगामिनी धाकाक्षाओं को नभारने में, उकसाने में और उद्दीपित करने में ही है न कि नीरो-नरेश की भाँति रोम नगर की विध्वंस-लीला के साथ धैर्यकिरु-तुष्टि के चिहारे की ताल देने में।

इस युग के साहित्य की सजीवता सरलता, तीखापन और संवेदनशीलता ही उसकी प्रमुखतायें हैं। आज का कलाकार स्वत्व संग्राम की घमसान के बीच रथ रोके हुये न्यडे अकर्मण्य अर्जुन को त्याग बलिदान और धीरता की ओर प्रेरित करनेवाला कृष्ण धनकर ही जगती का फल्याण कर सफता है। भक्ति भावनायें, और रीति फालीन रंगीनियों एवं धाल की ग्वाल निकालने की बाजीगरी आज की यथार्थ जर्जरता के सामने आत्म प्रधचना मात्र है। उसे पुरातन पापाण प्रतिमाओं के स्थान पर पुरातत्व विभाग के सम्रहालय में रक्षित पर हमें प्रगति की ओर नवीनता और निर्माण की ओर बढ़ना पड़ेगा। आज के कलाकार को अपनी महानता लेकर समाज की उस निचला तह में उतरना पड़ेगा जहाँ भयावह अधकार और अचेतनता है। पर वही, जमकर जड़ धन जाना हा उसका कतव्य नहीं वरन् अपनी ऊर्ध्वगामा प्रेरणाओं के माध निम्न-स्तरीय भाधनाओं का सहेजे हुये फिर ऊपर उभर आना ही उसकी कुशलता और कर्तव्य है। केरल प्रात के महा-कवि थालातोल की यह युक्ति-युक्त दलील हमारा मार्ग स्पष्ट कर देती है—

“आज की रिधति में कम से कम कुछ दिनों के लिये, कला को

उसकी अत्युच्च और उदात्त अट्टालिका से उतार कर नीचे जन समूह में लाना होगा। जब जनसमूह काफी चत्रत हो जायेगा तब कला का भी तल फिर से ऊँचा हो जावेगा। पानी भरने के लिये गागर को कुएं में उतरना होता है। जल भरकर फिर वह ऊपर उठ आती है। कला' को भी यही करना पड़ेगा। जीवन-तत्व के लिये उसे जनता के मध्य जाना पड़ेगा तभी वह सार्थक होगी।”

परन्तु साथ ही प्रत्येक राष्ट्र-वादी प्रगति-पथी को एक छतरे से अवरय सचेष्ट रहना चाहिये, वह है उन्नत रसलता और नासमझी का। प्रायः आज के भारतीय (विशेषकर हिन्दी) प्रगति क्षेत्र में ऐसे भी कला पक्षी अवतरित हो रहे हैं जिनकी निगाह में रस का लाल फडा हँसिया-हथौडा और तमाम स्थूल आधारों का नीरस और ज्यामितिक (Geometrical) चित्रण ही सच्चा प्रगति पाद है। साहित्य में कोई भी पाद' विवाद और विडम्बना पर आधारित होकर नहीं टिक सकता। सवेदन शीलता ईमानदारी और अनुभूति प्रधानता 'कला' के मुख्य अंग हैं। अस्तु जब तक कला प्रणयन में इन तीनों का समावेश नहीं होगा तब तक कोई भी कला-वस्तु' प्राणवान् और वास्तविक नहीं हो सकती। हृदय की अभिव्यक्ति ही साहित्य का आधार है दिमारां उलम्बन नहीं। प्रगतिशीलता का पथ प्रदर्शक जब तक स्वयं अपने हृदय को इतना विस्तीर्ण नहीं कर लेगा जिसमें विश्व के अणु-अणु का मन्चार और प्रगति मन्त्रिहित हो सके न तो स्वयं आगे बढ़ सकता है और न किसी का प्रेरणा ही प्रदान कर सकता है। 'तुलसी' की भाँति उमके रान्त 'सुग्याय' में ही "बहुजन हिताय " अन्तर्हित होना चाहिये। सीय-राम मय सब जग जानी', की विस्तीर्ण भावना ही सीय-राम' के व्यक्तित्व की इकाई को विस्तीर्ण और व्यापक बनाकर उसे कोटि-कोटि हृदयों पर प्रतिष्ठित कर सकता है।

इसी प्रकार 'मखूर-किसाना' के गीठ गाने वाले कवियों को अपनी सवेदनशीलता को व्यापक और विकार-शून्य करना पड़ेगा तब उनके गान जनता के गान और उनकी अनुभूति जनता की अनुभूति हो

सकेगी। और तभी उन्की प्रवृत्तियाँ प्रगति की ओर प्रेरित करने का बल प्राप्त कर सकेंगी।

कलम पकड़ते ही प्रगति के गीत गानेवाले बलापार भी बिरले ही होते हैं। अपने सुख दुख को सबसे पहले व्यञ्जित करने का प्रयास मानव प्रकृति की मूल प्रवृत्ति है। अस्तु—मैं यह नहीं कहता कि कला प्रणयन—अपनी स्वाभाविकता के साथ दगा देकर प्रगति के गान गाये। परन्तु उसे धीरे धीरे विकास का ओर स्वाभाविक-गति पर बदना चाहिये। पर प्रत्येक काल में एक अवस्था ऐसी भी आती है जब राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति का सामूहिक हित के लिये अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का बलिदान करना पड़ता है। आज भारत में भी वही स्थिति है। आज हम किसी 'कलाकार' के सीमित स्वार्थों को जलते हुये जनसमूह के बीच लान का अवसर नहीं देना चाहते। अपने ही सुख दुख में मस्त रहनेवालों को आज सामूहिक-विकास के युग में जनता के बीच उतरने का असफल प्रयास भी न करना चाहिये। यदि बलात् हमें उनको प्रगति पथी बनाने का अधिकार नहीं तो उन्हें भी हमारे चेतना के पथ में, जागरण के पथ में मन्त्रिा उँढेलने का अधिकार नहीं। माहित्य समाज का दर्पण है—उसमें हम किसी एक व्यक्ति के बेढगे चेहरे का प्रतिबिम्ब नहीं दृश्य सकते।

समाज और राष्ट्र पर आज दरबारी सामन्तों और श्रीमन्तों की प्रवृत्तियाँ शासन नहीं कर रही हैं वरन् जनता की सामूहिक चेष्टायें ही उसे प्रेरणा प्रदान कर रही हैं। अस्तु यह निश्चय है कि आज के कलाकार की कला' दरबारी-कवियों की कारीगरी' से भिन्न और व्यापक होगी।

बिहारी की नायिका से आज की नायिका भिन्न होगी (देखिये पृष्ठ २३ २४ ३७, ३८ और ५४) क्योंकि बिहारी के युग से आज का युग भी भिन्न है।

आज के हिन्दी कलाकार को प्रगतिशीलता अपनाकर अपनी राष्ट्रीय मसृष्टि के समस्त अंगों से निद्रोह करना भी आवश्यक नहीं

और यह भी जरूरी नहीं कि वह 'रूम की होन' नदी के जल को गठानर गंगा के मैदानों में प्रवाहित करने का हास्यास्पद प्रयास करे अथवा जेठ-अपाढ़ की गर्मी से तप्त भारत को यूरोपीय बर्फ पिंछों से ढँकने की अमफल चेष्टा करे। प्रत्येक कलाकार प्रत्येक युग में अपनी स्वाभाविकता, परम्परा और सस्कृति को मद्देजे हुये ही प्रगति की ओर बढ़ा है। अस्तु, आज के भारतीय प्रगति-पथा को प्रत्येक अरस्था में यह कभी भी न भूलना चाहिये कि उसके पैर हिन्दुरधान की धरती पर ही रुके हुये हैं, जिसके अन्न जल पर ही उसका अस्तित्व आधारित है। कलाकार किसी 'वाद' के घघन में नहीं बँध सकता—ठाक है। किन्तु व्यक्त को समाज की आकस्मिक दुर्घटनाओं को हर काल और हर अरस्था में प्रगणता देना ही पड़ेगा। सम्पूर्ण मसार जब श्यानामुखी के मुख पर चढा मुन्नस रहा हो तो मरस प्राकृतिक दृश्यों की भोकी भक्ति और प्रेम की मल-मली चादरों और छायानाद की धुँधली रखाओं की ओर 'कला' का रुम्नान होना अरवाभाविक है। कलाकार की व्यक्तिगत रवाधानता, बहुत कुछ उसके चारों ओर के शतावरण पर ही निर्भर होती है। हर पाल में जनता की सामूहिक-भावनाआ न एक ऐसा परिस्थिति उत्पन्न कर दा है—जिसमें सबके सब कलाकार यह गये हैं। वार गाथा काल क प्रायः सब कवियों ने धीरता और शलिदान क गान गाये हैं। भाक्त-युग क अधिकाश कवियों न भक्ति और रीति-काल क धारीगरो न श्रुद्धार क गीत रचे हैं। तो आप ही कलाकार के 'वैर्याक्त-रु-रवातत्र्य' का बेमुरा नारा क्यों अलापा जा रहा है ? आज वह कलाकार कलाकार नहो जिसका हृदय सामूहिक मवेदना से तड़प न उठे जो अपने युग की अनुभूतियों का प्रतिनिधित्व आज न करे। 'काशरो में बैठकर न तो साहित्य की धारीकियों की विवेचना ही की जा सकती है और न चेतना की चॉन्नी में कीचड़ ही उदाला जा सकता है। मघरे समझ अघ एक ही लक्ष्य है और वह है बंदा-मानव की मुक्ति का सामूहिक प्रयत्न।

कुछ लोगो का यह भी धारणा है कि आज का प्रगतिशील और सामयिक-साहित्य रथाई नहीं रह सनेगा—क्यों ? यदि उसमें मानवीय

भावनाओं की अभिव्यक्ति है तो यह तब तक अमर रहेगा जब तक
 मानवीय सृष्टि प्रायम है। परिस्थितियों के परिवर्तन में उस का
 म प्रणीत साहित्य की नपयागिता भल ही कम पद जाये किन्तु उसकी
 समग्रता नहीं घट सकती। आज अधोप्या का यह वैभव नहीं रहा
 जो राम-राज्य के समय था फिर भी रामायण में उसका चित्रण बड़ा
 दूर के लिये दूरी पारपाई पर लुढ़के हुए रंग को भी अपनी अर
 भाषणित कर ही लेता है। साहित्य यदि संवेदनशीलता के आधार
 पर निर्मित है तो वह चाहे जितना अमर और मुनम हो—अमर और
 अधुण रहगा ही।

साहित्य का रसा रथादर उसे पुरातत्व-सप्रदास्यों में सुरक्षित
 रखा म गदा वरन् जग म क र्ठों द्वारा गुजरित होने में ही है।

तुलमी की रामायण का रथादर अपनी मरलता और जनता की
 भावनाओं की अभिव्यक्ति लेकर देशों की गूढ़ता और दुकहता से
 अधिक परिपक्व और मजीब है।

अमु सामयिक साहित्य की अमरता उमर प्रणया की ईमानदारी
 और मुनमता पर ही अधिक आधारित है।

रोली की रचनायें आज के युग की मान्यताओं और व्यवस्थाओं
 पर ही आधारित हैं। अतु, वे आज ही के लिये हैं। कुछ देर
 चमकती है रोली शीर्षक गीत में मीने पहले ही इसे स्पष्ट कर दिया
 है। जान-भूमकर अमरा रचनायें सरलता और सजीवता के पृष्ठ-भूमि
 पर हुई हैं और जिस प्रकार प्रथम तूकान के गोंके धारिक होते हुए
 भी प्राकृतिक उपकरणों पर कभी-कभी रथाई चोट कर जात हैं वसी
 प्रकार रोली के छंद आज के मानव के मर्दित मन को एकसाकर उसे
 एक रथाई व्यवस्था के निर्माण की ओर प्रेरित करेंगे—ऐसी मेरी
 धारणा है और यही उद्देश्य भी।

अपने इसी लक्ष्य की सफलता पर मुझे सतोष और हर्ष होगा।
 रथाई और उच्च साहित्य सृजन का सामर्थ्य मुझमें है या नहीं इसे
 साधित करने के लिये मैं आगे आनेवाली परिस्थितियों की ही आर
 दसूंगा आलोचना की ओर नहीं।

किसी बात विवाद की दुम के बधन में पँध न तो मैं स्वयं एकांगी बन
 साया हूँ और न ऐसा चाहता ही हूँ। अबसर पर मैंने आध्यात्म भी अप-
 नाया है और प्रेम के भी गीत गाये हैं। पर, जब जन समूह का प्ररन
 उठा है मैंने व्यक्ति को हमेशा दधाने की चेष्टा की है। व्यक्ति के
 दधाने का अर्थ केवल उसके विकारों के दधाने से ही है सद्वृत्तियों से
 नहीं और इसी बुनियाद पर आज की गति देखते हुये मैं व्यक्ति को
 समूह के साथ मिलकर प्रगति गीत गाने का आमरण भी देता हूँ।

‘रोली’ की अधिकांश रचनायें विशुद्ध राष्ट्रीय, सामयिक, सरल
 स्वाभाविक और सजावट हूँ एसा कहने का साहस मुझे हो रहा है।
 क्वात्रि जिस आधार शिला पर वे प्रतिष्ठित हैं वह ईमानदारी और
 मवेदाशीलता पर ही स्थित है। नय-युगीय व्यवस्थाओं के व्यन्ती
 कारण मैंने कुछ नवीन उपमाओं का भी सहारा लिया है यथा —

हे शांत मलिल की शक्ति चोट लहरों का बल बधन में है,
 मानव के उद्भव का उफान अतर्हित पीडित मन में है।
 चिनगारी की चेतनता को ईंधन है भस्मा की मकोर,
 यिजली की प्रबल विकलता का बल है बारिद की घटाघोर।
 प्रोमू की पतली धारा को जब जगने नहीं मार्ग छोड़ा
 तब उमने स्वयं राह हूँदी पानी ने भी पत्थर तोड़ा।”

तुम मधु मक्खी मा फूलों का रस ले-लेकरके धरने हो
 पत्तां में छिपकर झुड झुड मधु-कुंड व्यथ ही भरते हो।
 जब एक धुर्य के कोंके में बन पीत-पत्र झड जाते हो,
 अपना सचित रस-सार अधिक के हाथों में धर जाते हो।

इस प्रकार वहीं कहीं परम्परागत प्रयोगों को भी अपने आशय और
 अभिव्यक्ति के अनुसार परिवर्तित करने में मैंने स्वाधीनता बतता है।
 यथा — दारक में स्वयं को जला देने के लिये ही अभी तक पतिगे का
 प्रवृत्ति प्रसिद्ध रही है कि-तु मैंने इस तरह भी उसका प्रयोग किया है —

“भने रहे जो रहे देमने सदा दूर से खेले
 जले पतिगे जो पावरु को गये बुझाने पान।”

इस प्रकार हर स्थान पर मैंने अपने आशय को स्पष्ट और सटीक याने के लिये अपनी स्वतंत्र सत्ता का उपयोग किया। और चाहा प्रयाग सफल रहा है इसका भी निश्वास मुझे है।

मुझे गीत से स्मरण है कि मुकवि श्रीसोहनलाल द्विवेदी ने एक दिन कूट मित्रों के बीच बड़ाई के माध्यम से कहा था कि —

‘मराज तुम्हें मैं बधाई का पत्र डालने वाला था ‘पाना की पतली घारा’ वाला प्रयोग मुझे बहुत ही प्रिय लगा—वास्तव में तुम मेरे मन के अनुकूल मजीब और सरल साहित्यकार हो।’

साहित्य की सजीवता और उपर्यागिता व प्रयाग समाज की अनुभूतियों पर हा किये जा सकते हैं—आर उह मैंने जनता के बीच किये भी हैं। जिसमें मुझे प्रति धार सफलता मिली है।

मुझे अपना कला’ पर अपनी ईमानदारी व हा आधार पर भरोसा है इसीलिये आज इसे जनता के समक्ष पुस्तक रूप में रखने का साहस हुआ—फिर भी मैं अपने आलाचनों का समस्त रख धालोचनाओं का स्वागत करूँगा।

‘भूमिगत’ किसी अन्य से लिखाने का प्रश्न मेरे सम्मुख भा उपस्थित हुआ था और हिन्दी साहित्य के प्राय सभी सुकवियों का स्नेह भी मुझे प्राप्त है फिर भी मेरी आत्मा इस विषय में किसी अन्य को कष्ट देने के लिये सहमत न हो सकी। क्योंकि अपने दृष्टिकोण को स्वयं उपरिगत न कर दूसरे द्वारा उसकी व्याख्या करना कुछ अशोभन सा लगा।

पुस्तक, पाठकों के सामने है—उसके गुण दोषों के वे ही सच्चे समीक्षक भी होंगे और उही की आलोचनाओं का प्रभाव भी मुझ पर पड़ेगा। अस्तु, अपने ही हार्थों अपनी वृत्ति उनके सम्मुख स्वयं रखने में मुझे सतोष और आनन्द प्राप्त होगा।

‘रोला’ के मुख्य प्रश्न के चित्र का भाव प्रदान करने के लिये मैं अपने समीपतम मनो कहानी लेखक श्रीबैकुंठनाथ मेहरोत्रा प्रकृत सशोधन के लिये आशुतोष एव अपने कवि जीवन के प्रमुख आधार स्तम्भ पंडित प्रवर रघुनारायणजी पांडेय, मुकवि श्रीबालकृष्ण राय,

एवं विद्वद्भर भगवत्शरण उपाध्याय को धन्यवाद दे भाई मोहनलाल खरे भाभी चद्रकला खरे, आशालता त्रिपाठी व कु० फ्लोरेन्स सैमुएल का हृदय से आभारी हूँ, जिनकी ममता और सहानुभूति ने मेरे जीवन को पुष्ट और परिष्कृत बनाया ।

अत मैं अपने पाठकों से यह निवेदन कर मैं अपने वक्तव्य को समाप्त करता हूँ कि 'रोली' मेरा प्रथम प्रयास है, अंतिम नहीं ।

गङ्गा दशहरा स० २००१ वि०
हिन्दी-लेखक-संघ
२४ ए० माडल हाउसेज
लखनऊ ।

शशाङ्क खरे

(साहित्य अनुवाद)

रोचते क्षणं रोचना-रुचिः

क्षणमिह शूरस्य शुभे शिरमि—
श्रियमाश्रयति श्रोत्रीपशिरसा

मूषाय भास्वरे षलि वेदी—
पथमेपा वितरति दीप शिरसा

रे गच्छत्संबत्सर वक्षसि होलिका ज्वलति प्रतिभात शुचि
रोचते क्षणं रोचना रुचि ।

(२)

* क्षणमिह गगने रे विलसता—
रोचक - मेचक - जलधर माला,

क्षु - लघु विदुषु धीर धीर—
सतुलित भाव मृगा जाला,

वेभवे षलित - बलि - धीराणा रे क्षणमात्र सचरति रुचि ।
रोचते क्षणं रोचना रुचि ।

ईशदत्त शास्त्री 'श्रीश'

काशी ।

शाली



शाली

कुछ देर चमकती है।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
समर्पण	अ
प्रकाशकीय	ब
रोली का रंग	१-६
सरकृत अनुवाद	१०
कुछ देर चमकती है रोली	११
१ मुखरित करो मन के गीत	एक
२ कवि की वाणी	दो-तीन
३ कला की कसौटी	चार-पाँच
४ कवि के परम जग, मग से आगे	छ-सात
५ कवि गाँवों की ओर चलो	आठ-न्यारह
६ भूखा बगाल	बारह-तेरह
७ बंधु विवशता में भी यत्न है	चौदह
८ जीवन-संगीत	पंद्रह
९ कारा की कोठरियों में दीप जले	सोलह
१० बंधु जीवन मुक्त होगा	सत्रह
११ ओ, बाणी घाले मौन, योल ।	अठारह
१२ ठहरो, मृत्यु पथी दीवाने	२१ बत्तीस
१३ युग के प्रतिनिधि बोलो	बोस
१४ चालीस करोड़	इक्कीस याइस
१५ अगार लिये आता हूँ मैं	तेइस-चौबीस
१६ जय जलो जवानी एक बार	पन्नीस-छत्तीस
१७ बंधु जीवन साधना है	सत्ताइस
१८ धुम्क न जाये दीप मेरा	अट्ठाइस

कुछ भ्रामक अशुद्धियाँ

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
१	छठी पक्ति अगस्त १९४३ ई०	अगस्त १९४० ई०
३६	चौथी , अम्म	भम्म
,	११ वीं , घर	घट
४०	प्रथम छत	स्त
५३	नवीं अमृत का प्याला	अमृत का प्यासा
	१३ वीं पुलकर	सुनकर
५४	दूसरी ,, धूल के फूल	छूल के फूल
,	१० वीं , तो हृदय भरे	जो, हृदय मरे
	१६ वीं , पखे तुम भरती जाती	परे तुम भरती जाती
५५	दूसरी ,, भय में भस्माचल से	भय के भस्माचल से

मैं कविताओं के अन्त में पत्र-पत्रिकाओं का नाम देना स्वयं कभी नहीं चाहता था—पर मेरी बहिन (जिसके पास मेरी सारी रचनाएँ थीं) के आप्रह और मेरी अनुपस्थिति से ऐसा हो गया—इसी कारण इस विषय में भी कुछ अशुद्धियाँ हो गई हैं—कुछ कविताएँ प्रकाशित किसी पत्र में हुई हैं पर नाम किसी का छप गया है—यद्यपि अशुद्धियाँ दो ही एक हैं फिर भी उनके लिये मुझे दुःख है ।

—‘मरोज’

गीत—

भुत्परित फरो मन के गीत ।

मौन बन कर ही न जाये, बाधु ! जीवन बीत ।

स्त-घ-रजनी में व्यथार्ये—
साधनार्ये, सो न जाये ?
आज अविरल आँसुओं मे—
वेदनाये धो न जाये ?

धूल मे मिल भूल जाये पथ न निज भय भीत ।

बाध स्वर के तोड दो अवन,
छन्द छितरे जोड दो अब !
कल्पनाओं की तरी पर—
भावनाये छोड दो अब,

हार हो इस पार की, उस-पार की या जीत ।

‘प्रताप’

‘कला’ की कसौटी—

आज न जिसने प्रलम गढ़ाई पगु-यन् अत्याचारों में ।
उस पायर कवि की गिाती है नवयुग के हत्यारा में ॥

जिसके मन के भाव, पाव मानवता के भर नहीं सके ।
जिस भायुन के अश्रु आज, परवशता में भर नहीं सके ॥
आज दनुजता के दशन में, जिसे न श्रुद पीडा पहुँचो ।
उस पगु को हम गिनें भला क्यों साहित्यिक कृति-कारों में ?

मचले मन की आजादी में आज न जिसके पाथ कसे ।
भीतर खाकर चोट सदा ही हँसा दिया जो गहर से ॥
जो न जगा खूनी छीटां से, बलि वेदी पर जा सोया—
उस मानव को गिनें भला क्यों अपने पहरेदारों में ?

आग लगी दुनिया में, जिसने की लपटां की अर हेला ।
उसे न मुरा मिल कभी सरेगा आज न जिसने दुख मेला ॥
विपति विपमता की बेडी में, पग सोये जो, दूट चुके—
जो पतझड में टिका न तरु, यह फूला नहीं बहारों में ॥

अपनी लेकर ‘कला’ कमल सा जो कीचड़ में फूल बना ।
मानवता के महायज्ञ में जो जन जलती तूल बना ॥
जीवित रह करके जगती के चुमते काँटे चुन डाले—
और धन्य है वही, मरा जो जनता की जय पारों में ॥

आज-वही कवि, जिसने पैदा कर दी बलि की बैचनी ।
 आज वही रवि धीर गई तम को जिसकी फिरणें पैनी ॥
 वलाकार है वही जला जो, जलती जगती के कारण—
 'रोम्या-रोला' सा शहीद वन, फासिस्वी-फुफ्फूरो में ॥

आज न जिसने कलम गडाई पशुवत् अत्याचार में ।
 उस कायर कवि की गिनती है, नवयुग के हत्यारों में ॥

'हस'



कवि, गाँवों की ओर चलो—

बिरहे चोगन्नों में जिाके अगुन-
अमन्य गुण—गात भरे।
रिथदों में परम वेतना के,
अरपट, अमर अरमान भरे।

जिनरी पथगाई आर्गा में,
युग-जापति वे अभिमान भरे।
जिाकी दुर्गति मे प्रगति पनी
अयनित मे रिभन विद्या भर।

जिसकी दुनिया है घसी हुई,
मुनमान प्रवृति के कोने में।
जिनका मुख-अम रो जाता है,
दौलत क गहरे दोने में।

घालायें जिनरी तिम-तेल से,
अपने केश भिगोती हैं।
मिठी की चार चूड़ियों को,
फन्यायें तिनकी रोती हैं।

जिनको साड़ी, जगलबाही,
तन्त्रेय नैनमुख सपने हैं।
चिथड़ा की जर्जर खरी, घसा
जिनको अति दुर्लभ अपने हैं।

उन अबलाओं की आहों में
 फिर उमड़ अरोप अतीत चलो ।
 उन गाँवों में, उन गौठों में
 कवि अपने गाते गीत चलो ।

असवार, रेडियो, यत्र-तत्र या
 जिनको कुछ भी ज्ञान नहीं ।
 युग-जागृति क्या ? जिनको पिछले
 परवारों की पहचान नहीं ।

रमई मतई का व्याह-भोज ,
 रँगई रहीम का स्वाग सफर ,
 नितकी चर्चा के विषय और ,
 दुनिया की उनसे कौन खबर ?

कलुआ, बड़सिपा, बुद्धि-हीन ही
 बेल बने जिनके सहचर ,
 जिनको अन्निष्ट ही इष्टदेव ,
 औ' जमींदार ही जगदीश्वर ,

उन उभरे मिट्टी के ढेलों से
 जोड़ जगत की प्रीति चलो ।
 उन गाँवों में, उन गौठों में
 कवि अपने गाते गीत चलो ।

हो गई सुबह नन्ही मुखिया
 कुटिया के टट्टर खोल चली ,
 अम्मा ! बासी दे, भूख लगी
 रोकर यह मुह से बोल चली ।

भूखा बंगाल—

भारत का सिंह द्वार, सूरज पहले जिस ओर निकलता है,
वह आज भूख की ज्वाला में 'बंगाल' चिता-सा जलता है,
साथी ! चन्नालिस धार जहाँ, जापानी भीषण धम धरसे,
हो गये जहाँ से टकराकर, कुठित फासिस्तों के फरसे ।

जिसने पत्थर-से सीने पर रोकी भीषणतम धमधारी,
वह आज भूख से तडप रहा, मानव रहा रही महामारी,
कितनी महिलाएँ मुट्ठी भर चावल पर बँच रही जीवन,
कितनी कन्याएँ मुट्ठी भर चावल पर बँच रही जीवन !

कितने बच्चे त्रिलनिला रहे हैं नामदान के कीड़ों-से,
कितने घर उजड़े आज लग रहे चमगोदड़ के नीड़ों-से,
कितनों के घर में डड पेलते चूहे, सूख रही आँतें !
सड़कों पर मुर्दा बनी लुडकती सड़ी-गली मानव पाँवें !

दो-दो रुपयों पर पिता बेच देता है अपने बेटों को,
दो-दो दानों को रे मानव अब पीट रहे हैं पेटों को,
दो-दो चावल के दानों पर नीलाम हो रही मानवता,
दो-दो टुकड़ों पर कुत्तों सी है बूद रही भूखी जनता,

घटगाँव हमारी रक्षा का दृढ़ सिंह द्वार अविजित नाका
रख रहा हमारे स-मुग्य है मिटती मानवता का खाका,
कोरी सेनाएँ ही कैसे फासिस्तों से लोहा लेंगी,
जब जनता की सगठित शक्तियों अपने कंधे धर देंगी ?

दुनिया के दुगियों के साथी, दुनिया के दलितों के भुज-बल,
चेतो, अत्र आज सँभल जाओ। तुम पर ही आशाएँ केवल,
नवजात राष्ट्र की चेतना मे घुसे न कासिस्ती भाला,
वह चले न जनता के शोणित का आज प्रबलतम परनाला।

रे। आज सूखकर काठ बन रही है लडनेवाली बाहें
हुकार जहाँ से कटते थे वे अधर दौड़ते हैं आहें।
नौकरशाही तू चेत निपट कोरी बटूके क्या होंगी,
जब जनता की शक्तियाँ अरे काका से परत, फना होंगी ?

तू आज जेल मे सडा रही भारत की रजनी के तारे
औ, इधर भूख से व्याकुल हो जायत जनता हिम्मत हारे
बम बरसेगे। हम सह लेंगे, आमरण भले अनशन होगा ?
कासिस्त फना होंगे पर अत्र जनताका अनुशासन होगा।

भारत के प्यारे रणवीरो भर दो इन भूखो की गोली,
जो आये दिन खा रहे तुम्हारे लिये शत्रुओं की गोली।
मुर्दा लोथों की पाँतो पर सुख की शय्या धिक्कार तुम्हे,
सूखी आँतों से बँधी हुई धन की थैली धिक्कार तुम्हे।

धिक् है धरों सी तादों की ऐ बदनूदार डकार तुम्हे,
सब गान-पानसम्मान शान-जलपान भोज धिक्कार तुम्हे।

‘लोकयुद्ध’

गीत—

पानु 'धियगता' में भा वर है ।

रिद वभाय की धंभी अर्यों में भी मरा हुआ तो जन है ।

• चाहों में भी 'बाह' विधी है,
सागर में भी धाद विधी है ।

अपल लहरों पर अलहर भी गीतल शशि प्रतिविम्ब अपल है ।

गीत-गगन के निर्गल तारे
सों ही अपने नयन पसारें ?

गद्दी, कही तो अपकार में विधी गेगी उनकी उज्ज्वल है ।

मा न मरा तो मा धी चाही
वरु मिलेगी रिचय राती ।

अले अलो पथ पकड़, कंटर्पा में तलवा पी रचना अपल है ।

'प्रता'

जीवन-संगीत—

जहाँ प्राण पायेय वहाँ पथ पथी कैसे हारे ?
आँधी के झोंकों में नभ के कव बुझ गये सितारे ?

क्षण को ही ये विपम बवडर छाएँ, फिर छँट जाएँ,
हुई मलिन कव इनसे रवि की चिर ज्योतिर रेखाएँ ?

जहाँ अमर अस्तित्व जलन ही, वहाँ बर्फ़ यत्र जमती ?
जलती याती, अलस अँधेरे में हिलती ही रहती ।

साथ-साथ चलता है साथी बनकर सुर का दुख भी,
दरा हुआ दुर्भाग्य कभी हो जाता है सम्मुख भी ।

पर इससे जागृति के योगी कव निराश होते हैं,
जागरूक जीवन के क्षण कव सध्या में सोते हैं ?

धूल भरी आँखा के आगे आज तनिक जो तम है,
'भ्रम' वह भय-सकुल प्राणों का, नदी सृष्टि का क्रम है ।

‘प्रताप’



कारा की कोठरियों में दीप जले—

आज महल सूने, कारा की कोठरियों में दीप जले ।
चलो भला ही हुआ, अमा में तम पे और समीप जले ।

लिये चेतना की चिनगारी प्राण प्रताड़ित दमक उठे,
आज सुनहली ज्योति चुराकर लौह-सींगचे चमक उठे,
हाथ बँधाकर व्यथित गनुजता खोल रही मन की कारा,
सजग, अमर आलोक शिगा में भगुर भय के घीट चले ।
वहीं किसे यह क्षात चमकती ये क्षण को ही दीपाली,
पर, बुझकर ही कहो अमरता इस जग में किसने पा ली ?
तो, फिर तम से प्रसित धूम बन उसमें ही क्यों मिल जाऊँ ?
म्यों न चमक कर ही त्रिजली-सी घय की चाती शीत चले ।

आज महल सूने, कारा की कोठरिया में दीप जले ।
चलो, भला ही हुआ अमा में, तम में और समीप जले ।

‘प्रताप’



गीत—

बधु ! जीवन मुक्त होगा
यह न समझो विवशता में—
यारि ही है धल नहीं है,
यह न समझो विपमता में—
हार ही है 'हल' नहीं है,

जाग जायेगा सत्त जो त्याग जौहर-युक्त होगा ।

हो गया जो तीर खाली—
तो उसे मत तोड़ डालो,
मिल सका जिसको न जल—
वह पात्र ही मत फोड़ डालो,

आज असफल रह गया जो, कल वही उपयुक्त होगा ।

‘प्रताप’



गीत—

युग के प्रतिनिधि बोलो !

युग-धर की कृतियों के स्वामी,
कुसुम श्रुति मंगलियों के स्वामी !
आज स्वयं धन गृहे भला कर्पा
अध-धाम मग के अनुगामी ?

अपने उगम्यल अतमल मे अरि मिमिर-तल धोने ।

आज तुम्हारा भी समय पर
फलाहार ! भीषण भीषणतर
स्वर्ण-राशिपा को ठुकरा दो—
लोहे की लघु बज्रम उठाकर ।

कवि-कोविद, अब श्वेत-यत्र पर कपट-काहिमा खोलो !

प्रवा

चालिस करोड़—

हैं आज देश की इज्जत पर जीनेवाले चालिस करोड़ ।
जीनेवाले चालिस करोड़, मरनेवाले चालिस करोड़ ।

Jain Library
BIKANER
Vol No 3466
Ser No 823

समझो ये आहत 'के परफाले है,
मे अपने हथियार सन्हाले हैं,
तो आने दो, ये पद-दलित नाग,
विल मे अपने अपने फन डाले हैं ।

उनको भी अगगत हों जागगा 'कितने 'य जहरीले है—
जो मचल मचलकर इठलाते हैं कोटि-कोटि की कमर तोड़ ।

इनको समझो मत फूल, भूल यह, ये ज्वलन्त अगारे है,
है लपट बुझ गई, पर अब भी जलते सारे के सार है,
इनके मत में है आग छिपी, तन में कूबल है, ताकत है,
अवसर पर, दोनो ओर चलेंगे ये दम भरे दुधारे है ।

'चमकीली, पीली थीं' नीली इनको आँखें क्यों घूर रही ?
ये 'नूर' नहीं हैं शोले हैं, छूते ही दंगे मन मरोड़ ।

ये ककड़ पत्थर मे अँदवे भरने है राह न पाते हैं,
पर अँटक, अँटक सर पटन, पटक फिर भी बढते ही जाते हैं,
अँजलि भर भर तुम पी डालोगे इनको, यह नामुमरि है,
तूफानी लहरों को समेट पीने वाले मर जाते हैं ।

इनका प्रवाह तुम देखोगे, मिलने तो दो कुछ डाल इन्हें,
ये स्वयं भर उठेंगे भर भर सीले कँकरीले तोड़-फोड़ ।

गीत—

बुझ न जाये दीप मेरा ।

दीप, जिसमें तेल डाला साधना का बुझ न जाये,
दीप, जिससे खेल डाला, शलभ बन पर, बुझ न जाये,
छा न जाये डपटगाई आग के आगे अंधेरा ।
तू बुझा सकता न भूमा घात निज गति से हिला पर
में घचाती ही रहूँगी आग, अचल से द्विपा कर,
ले रहे हैं आज, आकुल प्राण ! पावक में बसेरा ।
दीप, रुक जाना न पथ खो, साथ मे मैं भी चलूँगी,
दीप, मुक जाना न शलथ हो, साथ मे मैं भी जलूँगी,
यामिनी मे जल, बुझेंगे साथ ही बन पर सवेरा ।

प्रताप

गीत—

बहन ! देश दुख दहन करो हे ।
बुझती दीप शिखा उकसा दो,
चल पलकों से जल न भरो हे ।
पुरुष-जाति हम जड़ पत्थर हैं,
इससे सह लेते ठोकर हैं ।
पर, तुम कोमल-सहज-हृदय मे मत
शत शत 'क्षत' सहन करो हे ।
जन-जन का मन मधुर हरण कर,
चलो ! चलो ! चेतना-धरण धर ।
चरण-चरण पर, मरण वरण कर—
जीवन मे जागरण मरो हे ।
जगह-जगह पर धधक धधक कर,
जगें, जगें, जड़ युग के जौहर ।
आभा का आभरण पहन तुम !—
जल-जल कर तम-गाहन हरो हे ।

‘प्रताप’

रक्षा-वधन—

आज बंधी हैं नहीं ज्वागं दधकिया मे पाहें,
यहाँ बहिर ये तनिर सूत के तागे हमरो क्या हैं ?

जिन हाथा पर पड़ी परोहों परधराता की वेतें,
वे जैसे अब आन साल पन्ने धागों से वेतें।

जिन बाशों में बिंधी बियशता की बहु भीरण तीरें,
रङ्ग न सक्ती उहें 'सलूनो' की लघु लान लकीरें।

अस्तु, बाँधनी ही 'गामी' है तो पहले आ जाने-
चेतरता की, (सार-तार में) तुम बिनली दीड़ाओ।

जिसे स्परा कर रुक न सकें ये दुषली-पतली पाहें,
तदप बज्रवन् बड़क उठें वे, सुन कर बरण कराहें।

भारत माता की जजारेँ दूक दूक कर हालें,
आघा शक्ति समाज तुम्हें हम पूजित कर सुख पावें।

~

प्रताप'

प्रोत्साहन—

बधु ! बढ़ते जा रहे हो !

राह चलते पड़ गया यदि झुटिल कोंटों पर पदम है
'अब न आगे बढ़ मरेंगे' यह करुण उद्गार भूम है,
चरण पङ्क्ति चिनगारियों पर और भी चैतन्य होते,
अस्तु, पीढ़ा से प्रगति का पाठ पढ़ते जा रहे हो !

बधु ! बढ़ते जा रहें हो !

पैर में कोंटे चुभो कर राह में हो रुक न जाना,
देख करके अधिक से घर खड्ग नुन ही झुक न जाना,
आन पग किसने नहीं, संकेत है तृप्त साधना का—
बधु गिर कर भी शिखर पर, समुद्र चढ़ते जा रहे हो !

बधु ! बढ़ते जा रहे हो ?

‘प्रताप’

वसंत

गिर गये पत्र, सुल गये शूल—

छाईं फिर पतमङ्ग की यमार; अशेष रहेगी किन्तु मूल।

हो गये मुक्त रंग तीड-हीन,

तरु-वृत्त-वृन्द पल्लव विहीन,

असमय मे हँसते बधु ! देख विगलित पाटल-दल को बबूल।

पर, पतमङ्ग ही होगा न अत,

तदनन्तर आयेगा बसन्त,

फिर ढँक जायेंगे दुखद शूल फिर खिल जायेंगे मुसद फूल।

‘प्रताप’

शोणित पर सिंहासन न टिका—

मैं देख रहा हूँ युग-युग से शोणित पर सिंहासन न टिका,
मानव का मज्जा पर मुख की सजा करके शासन न टिका।
ऑसू की पतली धारा को दुर्नमन न बलकर बाँध सका,
पीड़ित प्राणों के पारा को कम करतल पर जग साध सका ?
पाहन की पतें ढँक न सकी ज्वालामुखीय हुँकारों को,
सागर न बुझा पाया बड़वाल के अंतर अंगारों को।
भुक सके न अकूर आँधी से, भगुर भय से तप रुक न सके,
पलिदानों पर बल वैभव—युत सुरपुर का इद्रासन न टिका।
घिनगारी की चेतता को ई धन है मक्का की मक्कोर,
विजली को प्रबल विकलता का बल है नारिद की घटा घोर।
है शाव सलिल की शक्ति घोट, लहरों का बल बधन में है,
मानव के वद्भव का उफान अन्तर्हित पीड़ित मन में है।
युग की जकड़न से रुद्ध हुआ कव कवि जीवन का क्रुद्ध गान ?
कर गया पार जन-जन मन को अभरों पर आयाहन न टिका।
मन-मन की ममता को मरोड़ जड़ता, जागृति से दूर हुई,
जन-जन की समता को बटोर साम्राज्य-व्यवस्था चूर हुई।
जो मधु माखी सा मचल-मचल फूलों-फूलों को छल जाते,
वे मोम-भङ्गल में मधु लेकर गति की गर्मी में गल जाते।
अपहरण जगत में मरण और शोषण जन-रण का आमंत्रण,
कर द्रुपद-सुता का वस्त्रहरण दल बल पर दुःशासन न टिका।

'विशाल भारत'

मानव मन की लाली देखो—

जगत मन के अविद्या में मानव मन का लाला देखो !
दूँदो न लाली के आगे जब शक्ती चल की घारा हो ;
नृगु की मिलाविल ममता को मज दून खला मिजारा हो ।
मानव न मुषल शरों पर जब हाथ प्रकृति का प्यारा हो ;
आँसू की दृष्टकी नारों को सागर का मिला सहरा हो ।
जब ज्योति आँसू की पुतला के पों का पीर समा जाय—
तब तुम उलूख से गददग में मन रतनी काला देखो ।
हर श्रोत धिताश्रा पर बसत चरणों की तुम तेरी देखा,
मानव न आगे मानवता न भर पर प्रूरखी देखो ।
जड़-युग के जकड़े हाथा पर तुम जलन अगारे देखा,
फायर मन को, पन-भा पर अर्य अपना हिम्मत हार दगो ।
ओ ! मदानारा के मतवालो आँसू बालो अचे न धनो—
अब आज दजाहल के अघरा पर मदिरा की प्याली देखा ।
गतिमती मनुषता के पग की भुन मुनी मटककर दूर करो ;
जो शिगड़ी दुनिया के धल पर है धनी पटककर घुर कर ।
पीने पत्ता की परछाँही म कबरों सा सोना छोड़ो ;
अभिनव-युग के पञ्जव दल से भा का कोना-योना जोखो ।
निर्माण मौंगता प्राण न अब तुम उसे प्यरा में फेक मरो ;
मर मरकर जीनेवाला ये जीवन की हरियाली देखो ।

‘ज्योत्ना’

आज हलाहल ही लूंगा—

मैं बनकर शकर, प्रलयकर नहरा का हलचल पी लूंगा ।
तुम मुझे न मधु का दान करो मैं आज हलाहल ही लूंगा ।

वह जहर कि जिसमें तहर ले रही नागिनि बनकर निर्ममता ,
वह कहर कि जिसमें ठहर न सकती पलभर पीर भरी ममता ,

जो आज जवानों के नस-नस को तहस-तहस करता जाता ,
जो बँधे बाजुओं को मरो-मरो तोड़ तोड़ धरता जाता

जो फटे चीथड़ा में पिपटी मोंओं की आहों में पलता ,
पी करवे जिसको घूँट घूँट अब सिसक रही है सज्जनता ,

बन करके विषम व्यवस्था जो हो रहा व्याप्त व्याकुल जगमें ,
जो समा रहा है साँस साँस में रोम-रोम में, रग-रग में

उससे न डरो, उसको न धरो भय के भगुर लघु प्राणों पर ,
तुम उसे चढा दो चेतनता की चुभती हुई कृपाणों पर

तुम सुधा विन्दु के घातक बनकर चीख चीख मर जाओगे ,
लेकर कहुणा में कायरता पर प्राप्ति न कुछ कर पाओगे

मुझको दूँदा जग की ज्वाला में काल फूट पी जाऊँगा—
मरना होगा मर जाऊँगा जीना होगा तो जी लूँगा ।

तुम मधुमक्खी सा फूलों का रस ले-ले करके धरते हो ,
पत्तों में छिपकर मुड़ मुड़, मधु-कुड़ व्यर्थ ही भरते हो

जब एक धुप के झोंके में बन पोत पत्र मड़ जाते हो ,
अपना सचित रससार अधिक के हाथों पर धर जाते हो

तुम प्रलय काल में मुझ सख्य का माद लिये डर-डर जा
 मैं जहर पिये जाता रहता तुम मधु पीकर मर मर जात
 तुम बूँदें घाट जिया करते मैं लहरें पीनेवाला हूँ,
 तुम पलकर मरनेवाले हो मैं जलकर जीनेवाला हूँ,
 तुम रोझ-रोझ रोया करते मैं सग भैरवी गाता हूँ,
 तुम बनी बिगाड़ दिया करते मैं बिगाड़ी सदा घनाता हूँ
 भय-जाली जयानी के बंधों पर चढ़कर जो हुंकार रही
 पहले लेकर वद प्रलय भार फिर शांति-समुन्नति भी हूँगा।

धीर

हम अपना रंग उधाल चले—

तुम छिपी रहों पदों में पर हम अपना रंग उधाल चले ।

यह रंग कि जिसकी धूँदों में मौजें लेती कुर्रानी है,
जिसके पडने से लाल लाल हो उठती चुम्बी जवानी है ।

जिसकी सूरत को देख दुश्मनों की बढ़ती हैरानी है,
जिसकी सीरत पहचान पिघल पत्थर हो जाता पानी है ।

जिसकी ताकत से दुनिया ये दुनिया सुख सम्पत्ति पाते हैं,
जिसका बल पाकर धनवानों के साथ साथ कगाल चले ।

यह रंग हमारा बरसेगा उन पर जो आज झुलसते हैं,
जलती जगती की ज्वाला में पानी को पडे तरसते हैं ।

जिनके पीले चेहरों पर की झुर्रियों सिमट रह जाती है,
जिनकी दुखिया आँखें हरदम रूनी आँसू धरसाती हैं ।

सब हिमात परत जवानों के भा मन में धधका कर होती,
जन बल का विगुल बजा करके तलवारों पर दे ताल चले ।

हम उधर रहे जिस ओर देश के दीवानों की वरती थी,
हर ओर शहीदों की, घर घर में धधक चितायें जलती थी ।

तुम उधर रहों जिस ओर तितलियों फूलों पर थी मचल रहों,
मधुरस से भीगी पंगुरियों पर चार चार थी उद्वल रहों ।

फिर एक नदी के दो साहिल कैसे आपस में मिल पाते ?
इस ओर ताहू की धार नहे, उस ओर थपीर गुलाल चले ।

जब पायल की रुन् रुन् पर तुम थी दुगफ़ ठुमककर टाप रहों,
तब मौत हमारी इधर सिंदगी से पने थी बाँच रही ।

तब तुम गितार को स्वर लहरों पर भाग खराने जाती थी,
तब इधर दिल्लेरी की दुनिया में रग भेरी जाती थी। -

फीकी गितार को शाल पर तब तुम आँगों को
जब इधर गीत को आँगों में हम अपनी आँगें

मिलन को दोनों आँसु दे आँसु धम तुम मिल लें रानी।
हम बादल बन करे गरने तुम बरसो वा परदे पानी।
जलती जगती मैं जल भर दो गर पैरों की जजीर बने,
हम हिम्मत—बर के हाथ वा तुम सात धरी शमशेर बने।

दाना फिर वाँके माथ बलें दुख दुर्द का चाल चारु
जो चमक-चमक कर बिजली सी खुम जानेवाली चाल

रुपा

निहँसते अभिशाप अब हैं चितावत बरदान मेरे ।

❀ ❀ ❀ ❀

जब प्रलय को पार करके रश्मि सी रचना चली है ,

सृष्टि के सारथापकों की बेकली हो तब भली है ।

अधम के भडार में, अगार हो अस्तित्व अपना ,

जब चिता का प्योर करके मुक्ति की निकली गली है ।

जनन में ही जब हृदय की सिमट शीतलता समाई ।

गलभ की शुचि साधना सी, गधुर तब बलिदान मेरे ।

❀ ❀ ❀ ❀

कीन जीने क्या गगन में मगन तारे टूट जायें ,

और उनको मस्तिका के एक मानव लूट लायें ।

यह विवर्तन और परिवर्तन ! न तब आश्चर्य छुड़ यन्त्रि—

गरल में छिपकर बचे जीवन अमिय घर फूट जायें ,

बधु ! घटना-चक्र पर अधिकार क्या किसका रहा है ?

चाहता जग क्या कि शक्ति को 'राहु'-सा शैतान घेरे ?

❀ ❀ ❀ ❀

किंतु इतना तो पता सबको कि रिथर रहता न जग है ,

अध-युग के बंध से बंध भी हृदय उससे विलग है ।

एक हो सके अमावस पूर्णिमा के दिन न धुल मिल ,

जब धरा के चक्र का यह आदि से ही बक्र मग है ।

तब भला क्यों क्षणिक बटों से जुचल बालूँ अटल मन ,

जब कि यह अवगत, सफलता के अचल अनुमान मेरे ।

'भाज'

गीत—

मत छुओ मजनि, छवि से द्रव-क्षण ।

भर कभी न सकते भाव - भरे कवि ने जीवा के बहते वृण ।

नयनों मे लेकर धार धूँद,

मेरा प्रोखें क्यों रही मूँद ?

तुम हटो, देख लूँ मैं भी तो अपनी तृष्णाआ का तपण ।

कवि के अभाज के अधकार

में फर न सके रवि शशि विहार

फिर प्रिये, चमक सकने वैसे मोहक, मरुथल के सिद्धता-क्षण ।

जर्जर जीवन वा सूतापन

भर जायेगा छू स्नेह - सघन ?

क्षण भर ही को, फिर बूँदें धन बह जायेगा सुर का सावन ।

मेरा कदन सुन बार - बार

वैसे दोगी बाँहें पसार,

मानव न कभी मड़ सकता है ममता से, फूटा मानव-पत ।

‘माधुरी’

अब न भीम-अर्जुन आयेंगे—

अब न भीम अर्जुन आयेंगे ।

अब न लौट कर जीर्ण, पुरातन-युग
मानध । मन वहलायेंगे ।

अब अपना साहस, अपना बल
ही होगा, भय पथ का मवल ।

अपनी ही बलि से माता का
मुक्त बनेगा स्वर्णिम अञ्चल ।

अपने कटु अनुभन ही
अपना शुभ इतिहास बना जायगे ।

पीछे मुड़ कर क्या पाओगे ?
करतल मल-मल पछताओगे ।

चमकोगे, फिर एक बार यदि
वृद आज आगे आओगे ।

कल के किले आज के पग पर,
थम कर पुन सँभल जायेंगे ।

आज हड़िया मे विद्युत् भर,
मास-पेशियों को सुगठित कर ।

तंतु तनु सो तोड घना लो
प्रमल प्रयचा, कर हों शर-खर ।

कर्म-क्षेत्र मे बूद चलो तुम
विजय - केतु फिर फहरायेंगे ॥

‘आर्य मित्र’

तुलसी-स्मृति—

भौतिक भ्रम से उठी प्रबल थी जड़ता की जब जड़ ज्ञाना ,
 मानवता को पड़ी मिली थी तभी तरल तुलसी - माला ।
 शुष्क, अप्रिय अध्यात्म - जगत में बही सरसता की धारा ,
 पुलकायित हो उठे जीव जड़, खुली कल्पना की कारा ।
 तुलसी ! तेरे तरु - पत्रा में अनुपम रस संचार मिला ,
 मिला विरागी को विराग भव सासारिक को प्यार मिला ।
 तेरे ही स्वातःसुखाय' में जगती को कल्याण मिला ,
 शान्ति मिली, साहित्य मिला, मानस का अतःस्नान मिला ।
 मिला राम का नाम पूत, सीता का उज्ज्वल त्याग मिला ,
 लक्ष्मण का बधुत्व, उमिला का नारीत्व विराग मिला ।
 मिला शूर शस्त्र, क्रूर को कोमलता का नान मिला ,
 मिला हिन्दू को हृदय और हिन्दी को न्यतःमान मिला ।
 मिली 'भ्रान्ति को शान्ति, 'प्रान्ति का मिला लहकता अगारा ,
 द्विमथल को रवि रश्मि तप्त मरुथल को मिली धवल धारा ।
 सवन् सोलह सौ अरसी को प्राण लिये पर प्राण मिला ,
 असी गग को अनयास ही एक अमर निवाण मिला ।
 'श्रावण' को सन्तोष सन्तमी शुक्ला को समान मिला ,
 किन्तु हमारे उल्लुख नयनों को अर्धमृ आह्वान मिला ।
 आज राम का नाम और रामायण की पतवार धरी ,
 किन्तु अहो तुलसी तेरे बिन जग - नौका मँभधार पड़ी ।

रामचरित मानस में क्या श्रव सचमुच जीवित राम नहीं ?
 या कि जगत् है ग्म विषामित, उसे गग से राम नहीं ?
 थो फलसा फ इत्य तागरा क नागर, प्रिय आ गाथा,
 एक धार यह प्रश्न जगत में फिर से आ मुलभा जाथो।
 आथो, तुलसी ग्रन्थ आच भावता तुमको योल रही,
 हिन्दी नेर आगाथा को अगण अधर अद गाल रही।

‘माधुरी’



गीत—

एक में एकज खिलो तुम ।

एक सिहरन-सूर मे शत साधनाओं को सिलो तुम ।

दृश्य मे हिम-हास धन करके गले तो क्या गले तुम ?

प्रत्नर जीवन की दुपहरी मे जले तो क्या चले तुम ?

प्राण मे पीडा पिरोकर, आँसुओं मे पल, पिघलते—

'ज्योति' ही हो तो निविडतम को चमत्कृत कर हिलो तुम ।

उदधि के उमात् मे उमडी अमित सित शुक्तिया मे,

'स्वाति' के बन बुन्द चमके, जगत परिचित युक्तियो मे,

सूर्यते सर मे सडी जुत्क्षाम विरस बराटिका मे—

(मन्जु मुक्ता नन सनो तो) क्या न प्राणों में पिलो तुम ।

'माधुरी'

पंथी की पुकार—

कब तक उड़ूँ अपार गगन में ?

कभी कभी तो ले लेने दो मुझको क्षणिक बसेरा तृण में !

कैसे भीषणतम भ्रमारे ?

लघुतम पखो में भर जायें ?

कैसे चीर निविड नोरयता—

विकल प्राण विह्वल बह जायें ?

कैसे भरूँ उदधि आकुलतम शीतल पर क्षण के जल वण में !

डाली डाली आज लचीली ,

कली कली लगता चटकीली ,

राग-हीन नयना को भी अथ

निचली दुनिया गम्य रँगीली

नील निलय छवि-कण उन त्रितरा गृह-गृह में, आँगन आँगन में ।

जिसने तन में परत लगाये ,

उपर उड़ने को फैनाये ,

अरे ! उसी ने दम लेने को

नीचे भी ने पग लटकाये ।

इनको भी टिफने दो पल भर लघुतरु शाखा पर मधु घन में !

‘उपा’

वन्दी विहग से—

अब न अपना बल हीने !

पड़पड़ा दे कम पदी पीनदे व पाग हीने !

देव युग गिरि पाजां से
आज प्रगति प्रपात पृटा ।

प्रयत्न प्राप्त प्रहार से, न—
निश्चित कम का गात दृटा ।

अब मरित या मर भल
लग्न मिथु का उगाद पंदी !
पिघल पर पवि पुत्र भी अब—
हो रहे गतिमान गीत ।

अब न दिा है आँगुष्ठा न
आँ' न सोने का मगय है ।

सुति मग न पग चदापर
प्राण का भी अब न भय है ।

खोत दे पर आज भोगायात से
निश्चित हो कर ।
उड़ खलोगा तू गगन को
भड़ पड़ मे पात पीले ।

'शेष'

तारे—

ये नील लता के तारे
मूली आँसों को स्यारे न मूँदे में प्यार-स्यारे ।
ये मेरे मन व मधुर मीठ
अधरा नभसिम्बित करण मीठ ।
लियल अचने अतागत पर कवि ! आरती जगम जगारे !
ये मजुन दाप पुनारी के,
अधरा भंग्या मुकुमारी व -
हैं अगव रहे कुञ्चित कशीं में मलमे श्रीर मिथार ?
श्वेत्त्र किभव काग तियुञ्च—
में 'प्रेमता व पुण पुण
अधरा ये श्याग विगम शिला पर अवन मवन वृदार ?
कवि ही कचना दुगाव भर,
ली करणे शीपक भाव भर
अपने पिय की, लिय-मन्त्रि मे 'कथिता , आरती उतार ?
जो भीगा पलरा के पाहुन—
को देव न सर, तिमिर के न
अंधों को उपर चढ़ने के ये अटक अमर सहार ।

—

'गाधुगी'

अइतानीम

ये फूल मेरे—

मधुर है ये फूल मेरे !

आज फूले हैं युगों के नाग विरह उबूल मेरे !

दो हृदय के पल्लवा पर पुष्प मेरे खिल रहे हैं,
देखता हूँ, ओट में कटक निगतर हिल रहे हैं।
पर अभी तो भूम लेने को क्षणिक मृदु-गंध लेकर,
फल भले ही मत्त-उर में आ चुभें ये शूल मेरे।
मधुर चितवन को भले ही जग-नयन भँपना बतावे,
मृदुलता को मूर्छना कर, मिलन को सपना बतावे।
किंतु प्रातः चेतना की कल्पना कर, रात ही में—
नींद अपनी क्यों उधाड़ूँ डूबने दो फूल मेरे।
जानता मैं भी, न जीवन सत्य है, पर जी रहा हूँ,
जानता मैं भी, गरल में मृत्यु है पर पी रहा हूँ।
सो रहा हूँ आज युग के जागरण की दाह लेकर—
मत हटाओ, भूमने दो पलक के भुक भूल मेरे।

‘माधुरी’

शाश्वत संयोग—

जल रहा दीपा अनेला

बद पलकें पार परये, आ रहा अभिनव उनेला ।

आन मम रम-हीन वर्तित वहि की मुमफान गौली
हँस रही चिगाारियों मे मिलन की घड़िया रँगीली
श्वाम के शीथिन्य मे मतोप का युग जी रहा है
फट रहे वारिद विरह के, आ रही विधु विम्ब बेला ।

हृदय के स्तर चूम जाती, भावनाएँ चेतना ने,
उमड़ते उच्छ्वास अंतर की प्रवलतम प्रेरणा ल
गित, मुप्त ममत्र में अमरत्व भग्ता ना रहा है,
चु रहा अमृत नगा से, दे रहा हिय हाव हला ।

पर युगा का यामिनी बस एक सिद्धग्न म सवरा,
मिल गई चिर कालिमा के नीड मे नेकर बसेरा,
बिल उठी धलियों हँसी मानमरोर की लहरियो,
सजनि ! मुधि के सीर्यचा से वेदना ने आन ठेला ।

‘माधुरी’

तुम और मैं—

तुम मलयानिल की अँगड़ाई, मैं भभा की झरार प्रिये ।
तुम सजल नयन की सरस ऊर्मि, मैं फेनिल तारिध जग प्रिये ।
तुम अमर ब्रह्म अनुभूति और मैं यह नश्वर मसार प्रिये ।
तुम मधुर मिलन की शांति, विरह का मैं हूँ हाहाकार प्रिये ।
बिडुडन का तीपाधार लिये जब विकल हृदय की दीपशिखा—
जलती रहती, तब आ जाती तुम समुद्र प्रभाती रूप दिखा ।
ऊपाभी चुपके से रानी । तुम पहन स्वर्ण परिधान प्रिये ।
रु देती जात हृदय जगला, हो जाती अतर्द्धा प्रिये ।
सुख दुःख की आँख मिचौली में, यह विरह-गरल, यह मिलन सुधा—
ढाला करती तुम अमित प्रेम के रगस्थल में बन द्विविधा ।
शकाओं का साम्राज्य लिये, करती हो श्रद्धा पर शासन,
होते त्रिस्मृति विद्रोह अमित, पर अचल तुम्हारा सिंहासन ।
तुम लता नवल, मैं मेरुण्ड सूखे तरु का ध्वसावशेष,
मिट्टी में मूल गडा अपनी लहराती रहती निनिमेष ।
माया की गुञ्जलिकाओं से तुम लिपट लिपट बढ़ती जाती,
बाधन के पग धर धर नीचे गिरती जाती—चढ़ती जाती ।
तुम मुकुलित पद्म कुसुम कलिका, मैं हूँ अलि का गुञ्जार प्रिये,
तुम हो हिय की अनुभूति मधुर मैं मुस्य की करुण पुकार प्रिये ।
मेरा न लक्ष्य, मैं पक्ष हीन, इस पार न औ' उस पार प्रिये ।
मैं भरी तरो का सरल पथिक, मुझको प्यारी मैंकधार प्रिये ।

‘माधुरी’

शक्ति-साधना—

शक्ति, यहाँ सोई है

पात्र पावक का आघादन
लहक उठेंगे फिर अन्तर कण
धमक उठेंगे, धमकार से
गत हत प्रभ, जापनु हो जन-मन

बुझे फोयले में चिनगी—
चेतनता का सोई है।
शक्ति यहाँ सोई है।

सुन्नग, शयति, शोपित भुरमुट में,
सुन्नग प्रलय के पात्रक पुट में
धात्कार कर धन्क उठ फिर,
रे! ज्वाला, यौवन-सम्पुट में,

जागे हिय की चिनगारा,
जो आँसू से धोई है,
जागे, शक्ति जहाँ सोई है।

अधि

बीसवीं सदी की सन्तानें

बीसवीं सदी की सन्तानें यन्त्र-पेशी पर बढने आई हैं ।

❀ ❀ ❀ ❀

इस युग के योद्धा के मां का अगारे ही जीतल जागते हैं

फूलों में गेम नहीं उसका अध बोटें ही योमल रागते हैं ।

इस युग के पदित को पोथी के पन्ने मय फीके जागते हैं ,

चन्दन के पीजे चन्द्र विन्दु पर शोणित के गीरे जागते हैं ।

❀ इस युग का पिता प्राणरावा, माता दुर्गा भाई भाषण ,

बीसवीं सदी की बढने भी जीवन-पथ पर बढने आई हैं ।

इस युग का कलाकार के यज्ञ वाग्य को नहीं चूम सका है ,

अमृत का प्याला मदिरा के प्याजों पर नहीं भूय सका है ।

इस युग का कवि-जनता का कवि-लँडहर में नहीं धूम सका है ,

अपनी कविता से गोलों की गर्जन में मचा धूम सका है ।

इस युग का धन जनता या धन तन दलित देश की दौलत है ,

बीसवीं सदी की हुंकारें पुनकर मुख से कढने आई हैं ।

❀ ❀ ❀ ❀

इस युग में मानव विष पीकर अमृत का दान किया करता है

यन्त्रो धन करके स्वयं सृष्टि को मुक्ति प्रदान किया करता है ।

शापण की अति से सघर्षण का सीधा सबक लिया करता है ,

पैभव को करके प्रति प्रदान भर भर कर युयक जिया करता है ।

बेचैनी और परेशानी में बाँहें कन डोली होती हैं ,

बीसवीं सदी का मौतें भी जीवन प्रतिमा बढने आई हैं ।

तो कुछ न कहूँ—

जलते मन की ममता न अनुभूत बनो तो कुछ न कहूँ ।
 लूलपटों में सरस धूप न फूँत बनो तो कुछ न कहूँ ।
 ❀ ❀ ❀ ❀

सुरों पर धड़ मंदिर मेरने । मुग्धाने की घान बुरी ;
 तूफानों के तुमुल नाद में लगनी फोमत्र तान बुरी ,
 शोणित का सिंदूर सना फिर शरभागे की शाग बुरी ,
 ग्याला के प्रेमी पतंग को जुगुग की पहचान बुरी । •

साथ न चल सकीं पर जिस पर निरचय हमको चलना है ,
 उस पथ में तुम शून्य न बनकर धूल बनो तो कुछ न कहूँ ।

पतमङ्ग की छाया-सी छूँत्री दृष्टि ले ध्रुवनामयो बनी ,
 तुम कतरा में खींच रही हो अपने मन से नयी बनी ।
 किन्तु सड़ी लानों में होता जीवन का संचार नहीं ,
 बाध मके तो हृदय भरे मन में मिलता वह तार नहीं ।

जिस पर धरधर चरण सचेतन युवक घाढ़ में धूद चले ,
 यहो न स्वयं, पहानेवाले फूँत बनो तो कुछ न कहूँ ।

आज भयकर जह ग्याला में जय जगती जलती जाती ,
 पारि न द, पतटे पलकों के पखे तुम भरता जाती ,
 पाहन बन मैं अचल खड़ा तुम मोम बनी गलती जाती ;
 छाया-छाँट की छाँह दिया करके जीवत द्रलती जाती

यह कैसा उमाद कि जिसमें याद न जोधन भी रहता ?
 बार बार से एव बार की भूल बनो तो कुछ न कहूँ ।

कर्मयोगी

मैं खून खँगाल पिया करता हूँ—

जलते तन से, बुझने मन का मैं दापक बाल लिया करता हूँ ।
भय में भस्माचल से जय श्री मं ज्योति रङ्गाल दिया करता हूँ ।

❀

❀

❀

❀

चेतनाहीन कवि के मन की भावना भाप हो जाती है,
पर, सबल सचेतन जन-मन की साधना सॉप हो जाती है ।
अमृत ज़ाणी में विष लेकर मर्दित मर में फुफ्फ़ार भरे—
पानी ढरसाकर, पलकों में, मैं पायक पाल लिया करता हूँ ।

मैं शांति मुधा का इन्ड्रुक हूँ भिन्ड्रुक हूँ भोल भावों का,
मैं जलते तन जो चन्दन हूँ, मताहम हूँ दुखते घावों का ।
पर, दित को तिल से ताड़ बना सघपों में—सत्राटों में,
मैं विषम व्यवस्था के बरतन में खून खँगाल पिया करता हूँ ।

मैं कवि हूँ कोरे काराज से मतोप न मुफ्फो मिल पाता
निर्कर-सा स्वर में गर्जन भर पाहन मन में भी मिल जाता ।
दुर्बल मन को बल कर प्रदान आहत अवलों को साथ लिये
अवसर पर, कर से कलम छोड़ करके करवाल लिया करता हूँ ।

मैं मरण लिये खेला करता जायन से आँसुमिचोली हूँ
मैं शांत हृदय का सागर हूँ आक्रान्त हृदय की होली हूँ ।

मैं गरल पानकर सरल गान मन धीणा पर छेड़ा करता,
मैं, कठिन वाति कर, विषम भूति से शांति सँभाल लिया करता हूँ ।

बेहतर है हँस कर मर जाना

जिममें दिग्गज कर समने विचार एग पर में आग लगा दूँगा।
उत्तर रूप दरदशा दुनिया के सचमुच में गाय जज्ञा दूँगा।

ॐ

ॐ

ॐ

ॐ

जुगुप्सुप तक जन सटा है तब चाँद मियारे ही न रह
वस देस का सात मिट्टा है, जिम दस क प्यारे ही न रह,
जागे तागे जन रहे और तमार मेंकता हाथ रहे
मुर्दा को मिने चार कर जिने के एक न भाण रहे,
जयाय अरे यह अतावार, जातरा क प्रति दुरावार,
मानव-भाव के भा मा मे चण रूप में आग लगा दूँगा।

जब ऊँचे मुर्सी मे माने रोम का आज मिकार हुआ,
तब, दरगाशा-लो दिव्यों का नकर जगत बेदार हुआ,
धरतोजी धिगाशा पर भी यदि ऊँची का अमावार हुआ
तब मरपट पर गनेधाने तेरा भीतर धिकार हुआ
मातृका का मसन ममल अज्ञान वाने जिस पर चढ़ते जाते
उस वज्रति के ऊँचे गिरि को तड़ से भ आश दिया दूँगा।

दुमल का सर है जुवा, तुनेरों के हाथों में चूता है,
झौंझा में छन भग, फिर भी पलकों से पाती चूता है
इस मजधूरी से लारा गुण बेहतर है हँसकर मर जाना
इस मुर्दा मिट्टी में मिलकर जिदा बन करके जग आता
लुट रही मजुजता दुबड़ों पर फिर भी जो मजुकी लेलेकर
अब भी जेतें खराट है अक्की सुख मेत जना दूँगा।

दुनिया यह जिंदा रहनेवाले इन्सानों को परती है,
 सुर्जों की मिट जाती मुट्ठी भर मिट्टी में मिल हस्ती है।
 तुम भ्रान् भयंकर तूतानों में कमर मुकाकर चलते हो,
 तुम अपने माथ दगा करते अरना ही जीवन झलते हो।
 जो पुरवानी में दूर रहे वह भी क्या हिन्दुस्तानी है ?
 मैं ऐसे हिन्दुस्तानी की पानी में शान मिला दूँगा।

मैं कवि हूँ, अपनी कलम लिये कुचला करता हूँ काँटों को,
 मैं रवि हूँ, हँसता रहता हूँ लूलपटों में सन्नाहों में।
 मुझको न रुला कोई सकता, मुझको न धुमा कोई सकता,
 मुझको न सुला कोई सकता, मुझको न मुक्ता कोई सकता।
 काँटों में लेकर फूल, और फूलों में काँटे लिये घला—
 मैं आज यवन के गदारों के दिल में दर्द मिला दूँगा,
 इस रूप रुपहली दुनिया को सचमुच मैं आज जला दूँगा।

‘प्रताप’

इस कविता पर धारापकी जिले के प्रसिद्ध राष्ट्र-कर्मी श्रीमहन्त
 गन्नायबख्शा सिंहजी फोटवा जगजीवनदास ने कवि को एक स्वर्ण-
 दण्ड प्रदान किया था।

स्वाधीनता का गीत—

बोल उठी 'रानी' की तरह आगे बढ़, हरियादी ।
आज लाल-लपटों में लिपटी है तेरी आजादी ।

ॐ ॐ ॐ ॐ

आज कदम हैं अगारों पर तेरी ही ताकत है,
आज धुर्य में धूम मचाने चलना ही हिम्मत है ।
लू-लपटा म घट अन्न जो अन्न ही मज्जिल है,
छुपी जयानी जा घु घट में तो उस पर लानत है ।
कहाँ छिपेंगे भेड़-बकरियाँ बन कर मघर्षा में ?
घर घर में तो आज जमाने ने है आग लगा दी ।

ॐ ॐ ॐ ॐ

गटकी कारा की फोटरियाँ तड़क उठी दीवारों
हाथ बढ़ाकर मांग रही हैं आजादी मीनारों ।
कंकड़ पत्थर चले प्रगति का ओर और हम मानव—
मृतानी लहरों पर घटे किसका आर गिहारें ?
लपटों की गर्मी म बन कर मोम, पिघलते कायर—
चले चरण ओ आग मरण की ओर बने कौलादी ।

ॐ ॐ ॐ ॐ

यू० पी० प्रस्त विहार विकल है भूखे हैं घगाली,
जगह-जगह पर निचली बाकर छेड़ रही चेहाली ।
आज न उठे कदम इतने पर भी तो ये बेदम हैं
सावा के शर्षों को अब तक सूक रही हरियाली ।
प्रठो आज यह देश चलेगा कैसे मुक्ति-शगर पर ?
भूरी है चालीम करोड़ की जग पसकी आजादी ।

ॐ ॐ ॐ ॐ

पड़े आज भी जो गहों पर, वे गद्दार वतन के
 मौन उड़ाते जो अब भी हैं वे मक्कार वतन के।
 भूखी जनता की ताकत पर तरल नदी टिक सकते,
 सोच रहे अब भी क्या जाने मनसबदार वतन के।
 अपूर्णा माँ की घाँटों का जकड़े जँगलों में—
 जुला रहे हैं और पाम में वे अपनी बरबादी।

❧ ❧ ❧ ❧

भूल-भान कहती भूरांगी ! तुम सभी एर हा जाओ
 हा करके आजाद भुरामरी से निज प्राण बचाओ।
 गिनके हाथों में कुजी है आज समस्या इन की
 आज जेल की दीवारा से उनको बाहर लाओ।
 पूँजीशाही ने पिंजरे में बन्द बिहग धन-चारी
 उड़ो अचाक आसमान पर, युग ने हवा चला दी।

❧ ❧ ❧ ❧

अपनी-अपनी तलवारों पर आज चढा लो पानी
 नाँक रहे हैं गृद्ध दृष्टि से लोलुप जड आपानी।
 आखादी के प्यासो आओ, अपनी प्यास बुझा लो,
 और जमाने की लहरों का रुक न सकेगा पानी।
 चलो जघानो ! आज देश पर भीषण सकट आया
 एक मिनट की देर तुम्हारी है युग की बरबादी।

‘प्रकाश’

प्रेम रहा परिहास—

प्रेम परगने गले जगा में सब हरे नाकी व्याम
किन्तु रहा दुनिया में भवमुख प्रेम साहा परिहास ।
अपनी दाती पाइ परा ने आशा के अनुभूत
पनपाये पीये पीया में मनुक गिलाये पूव ।
दात्रो को पत्ते पत्ते की छोट दिपाकर शूल ।
दिया मुमन को गंध बढ़ाकर गंध शीश पर । पूव ।
किन्तु गिला जय मुगन उहा ने खला मधुप महरेंद ।
मूखी पतुदियो पृथ्वी क मर पर पदी अयास ।
ज्योति जज्ञी बावो के यज्ञ पर बाती लेकर स्नेह
बलती रही जलानेवाले को अर्पित कर देह ।
जाला पीती रही स्नेह-रम मुग्य सुबिधा के साथ ।
लगी अन्न में बेचन बुद्ध ही भाम दीप के हाथ ।
भले रहे जो रह देखते सदा दूर से खल
जले पतिगे जो पावक को गये मुकाने पास ।
पूना किया किसी ने लेकर गया और घरदान ।
आँसू देते रहे अघर के पलकों को मुस्कान ।
बोया किसी और न छाटा और किसी ने पेड़
ऊन मिला कँचीवाले को रही ठिठुरती भेड़ ।
जले और ही उनके बल पर पले दूसरे लोग ।
मोठी देता रहा सीप को चातक का सपवास ।

संघा

मधुर राग मेरा—

मैं पवन, मधुप या मधुर राग मेरा,
तुम सुमन, तुम्हारा मधुपराग मेरा।

ॐ ॐ ॐ

अणु-अणु में भर भर कर समता ममता—
मैं अम्विल जगत का आनिगन करता
अन-भन मुरली में मैं गुञ्जन धनता,
पन सौँठ-सरस जीवन लेकर चहता,

तुम एक वूँद धन, जिसमें चू जाती—
उह तरल-तृप्ति का तल-तड़ाग मेरा।

तुम कली तुम्हारा मधु मुकुलित यौवन
पाहर वैभज, अतर उन्मा उमन
भरने को अणु-अणु में भरन्द सारा
क्या खोल दिया करती न चन्द कारा ?

तब मलयानिल मैं, पाणि प्रहण करता—
नय-कुमुम तुम्हारा चिर सुहाग मेरा।

जो पल भर के जीवन के अनुरागी,
जिनके १ हृदय में चेतनता जागी,
उनको दे दो दो क्षण की लड़-चड़ियाँ,
उनको दू दो क्षण भगुर पसुड़ियाँ।

मैं सुरभि-सुधा का अमर उपासक हूँ—
उज्ज्वल अतर का अदृण राग मेरा।

पौँखों के प्रेमी आँसों के अचे
क्या जाने जीवा गन-धन के धचे ?

ताजे फूलों को करके वे घासी—
फिर फेंक दिया करते सत्यानाशी।

उत्के हाथों में पकड़ा दो पत्ते—
फूलों के दल का विभव भाग मेरा।

मैं आँसू मूँदकर ज्योति अनर देता,
मैं एक घूँद लेकर सागर देता,
मैं तुमसे रस ले भरुथल भर दूँगा,
सौरभ बन कर फण-फण को थर दूँगा,

जिसमें घँघ घँघा करता मैं तारे—
घड़ सरज तुम्हारा तरल-ताग, मेरा।

‘माधुरी’

कविता की कहानी—

सखि री ! मिली हृदय को चाखी ?

पुलक पुलक पल-पल चंचल धन चला नयन से पानी

सुररित कर मनुहार - मँजीरा

नाच गई मरुधल पर मीरा

गिरघर नागर शून्य गगन से—

उतरे प्रेम नदी के तीरा

भर अतृप्ति अँकवार—भावना ने की शुभ अगधानी ।

विकल वेदना ने शर छोड़े

विँधे पलक - पल्ली के जोड़े

बालमीकि धन धन, जन-जन के—

मन-मन ने भय - घघन तोड़े

बनी विकलता कविता कवि की

कविता, बनो कहानी ।

‘माधुरी’

कौन सुनेगा कविता तेरी ?—

कौन सुनाए रे अतिमानी ?
तेरे मदन - हृदय की चाणी ।
जिसके धुति-पुट सचे हुए हैं—
जिसके पलकों में है पानी ?

सब बहरे वा चुके शवणहर सए भर के वैभव की भेरी ।

जिमा सुनी गजन-गम्भीरी—
मुग्धरित मीरा का मंजीरी ?
कस मानवता के गँडहर पर—
'कविरा' की धज सकी नफीरी ?

'सूर' सूर वा गये स्वय ही पाकर जन का राह अंधेरी ।

जहाँ प्रगति से प्रीति नहीं है,
वहाँ हृदय की जात नहीं है ।
इस भौतिक युग में कोई भी—
भावुक मन का मोत नहीं है ।

बंघे हुए मन प्राण, चेतना है सोने-चौंदी की थोरी ।

'विशाल भारत'

छाया-छल—

रवि की किरणें—

आज मुँद गई है निशितम है,
उनमें पर न तीव्रता कम है,
यह तो छाया छल में भाई,
अलसाई आँखों का भ्रम है।

पापों की पी फटते ही फिर चमक उठेंगी छवि की किरणें।

दृवि की किरणें—

ढँक न सकेंगी गर्ह - गर्त में
आज विवशता के विवर्त में
ज्योति, युगांतर कर चमकेगी
जन जन के अंतर अमर्त्य में

काया की कारा में कब तक रह सकती हूँ कवि की किरणें ?

फवि की किरणें—

अतमुँद हो करके अंतर
मौज रही हैं आज निरन्तर
रोम-रोम से फूट पड़ेगी
अनजाने अपने अथसर पर

साथ साथ सजकर निकलेंगी रवि की छवि की कवि की किरणें।

प्रताप'

यथार्थ—

नरे गाग, अथ बेजात ।

भायताय तु न सकीं अथ विरल मा गा ।

आज अतर की टाभारें

मा गई, केमे तगाये ?

जब कि बाहर ही मने टै धूर-धर से का

गौग भातर घट्टि पाइय—

भद टै तिप्पद कजरव

पर सगद को दील जाता टै असद दुरार ।

कया भना जल मग सग हो,

जय लहर में ही बहर हो

दो भजे ही और नीचे मोतिया ती ग्या ।

'स'

प्रेम—

शत शत धधन के मुक्त द्वार !
हे ! अम्विल असम्भव के सम्भव, तुग हे अमूर्त के मूर्तकार !

मशय की श्यामल - मुपमा पर
श्रद्धा के स्वर्णिम पग धर, धर
तुम बढ जाने विश्वास पकड़
हे प्रेम ! पूर्णता के पथ-पर

भावाकुल - अम्बुधि मे तिरते डुनको ले, लेकर। चार-चार ।

जडता से टकराकर सम्भ्रम
जब मानव की मूर्च्छना प्रथम—
जागी, प्रभात के प्रतिभा का—
प्रस्फुरण, भरे मन मे अनुपम

तब पूर्व क्षितिज पर छत्रि छहरा करके तुम चमके प्रथम बार ।

सरिता की लहरों में चषल
वतरे तुम कवि के रवि भङ्गमल
सागर का अनमिल अलस अ-व—
छू दिया ज्योति से अतस्तल

गोक्रिक आभा से आभासित हो उठा भीषियों का बिहार ।

हे ! आकुल - अधरों के चुम्बन
हे ! जड़ - आँगों के आँसू-कण—(कन)

तुम हे खूनी सध्या के शुभ—
सुशुमार सुरभि शलथ आलिंगन

हे चिर-चेतन, हे चिररूता हे चिर मानवपन के डुलार !

जीवन यहाँ अकेला है—

जीवन यहाँ अकेला है ।

आँसों के अथड़ में आफर
आराध्या के महल ढहा पर

चल गये कितने अनजाने—

हिय होली में आग लगापर

तयों की पिचकारी लेकर कौन साथ में खेला है ?

सुधि की श्यामल शून्य जटायें

कब मानस-तट पर लहरायें

और उहीं से उतार, हृदय के—

पतरे आँसों में धा जायें

अपने ऊपर ही चू पड़ते वे, जग की अंधेला है ।

स्नेह स्वय ही सूनापन है,

चिर अतृप्ति ही आश्वासन है

मरु मरीचिका में मानव का—

तृष्णा से ही भरवा मन है

जीवित श्वासों का समाधि पर ही वो जुटवा मेला है ।

‘प्रकारा’

गीत—

दो हृदय भी मिल न पाते ।

दीपकी दो द्युति शिरायें
चाहती हैं पास आयें,
मिलमिला देती उन्हें—
मकमोरकर बहती हवायें ।

द्वार खुल जाते प्रतीक्षित पर पुजारी विल न पाते ।

मधुरवम अनुराग मे हैं—
टपकते जल - विन्दु खारी
स्नेह, सामाजिक विषमता—
का, लिंग अभिशाप भारी ।

ताड़ भी छोटा किसी को और कोई तिल न पाते ।

चाहता पल - पाँवड़ों पर—
घरण अनचीहँ न आयें
नाच जाती शूय पा, पर
अर्थगत असमर्थतायें

सुमन सौरभ से सने हैं, पर विवश हैं तिल न पाते ।

‘आज’

मैं वायुयान !—

मैं वायुयान ! मैं व्योममान ॥

मैं मानव निर्मित मात्र एक,
मैं महामत्यु का यत्र एक
भीषणतम शोणित तत्र एक—

दारुण मेरा शासन विधान।

मैं स्वयं एक बम गोला हूँ,
मैं स्वयं सुलगता शोला हूँ,
कम्पानिल का बम भोला हूँ—

उच्छ्वास प्रलय की ऊर्ध्वमान।

निर्जीव निगिल नभ पर चढ़कर,
गाता चेतनता के चक्कर,
बम गोलों से लेता टक्कर—

मैं सनिष्क नभ लड्डीयमान।

जब मैं मँडराता पर खोल,
आतन्त्रित हो उठता स्वगोल,
क्षिति क्षितिज-छद्म में प्रलय घोल—

गा उठते हैं भँरवी गान।

जब मैं अपना साहस समेट
थकथल में ले 'पायलेट'
कक्र, भूम एक रेता धपेट—

जर्जर हो गिरते गिरि महान।

मैं नभ पर चट ताडक नर्वन,
करन लगता जब कर मन, मन,
कर उठते नूपुर के कटि-कण

कर भस्म भुवन का विभव मान।

आत्म-विस्मृति—

मुझे हूँद दो, मैं लोया हूँ ।

मैं, तुमसे ही भिन्ने आया,
धाकर तुममें स्वय समाया,
वच्छयासों से मुधि-समीर बा—
उमड़ हृदय मे कोंका घाया ,

तरल-तरी पर पाल घटा कर—
सपने मे आओ, सोया हूँ ।

मैं क्या हूँ ? यह एक कहानी,
स्वय मुझे लगती अनजानी
तुममें ही तो मैं अतर्हित—
बधा जा रहा घन फर पानी ,

मैं घो रहा, तुम्हारे पद-तल—
ओर स्वय ही मैं घोया हूँ ।

‘आर्यमि

बीसवीं सदी में बन्धु, प्रेम नहीं घृणा करो—

उंची चिमनी से बड़ी
उष्ण धूम - धार सी,
कोन शूल से दिव
विवश विपैले फाले नाम के—
आहत-अंतर के आहत अनुराग के—
स्पीत फुत्कार सी
नीय बीत्वार सी
आ रहा हृदय की - बेर
नीर घृणा ।

विष क यमर सी जोभ-म, विकराल
पाल-पाल मो कराल
बहिन विनयणा की
कपालिके घृणा मो
घर घृणा ।

नारी नयनों से उतर प्रेमियों की भौंति
मारव कहे जान पाले
परिमुष्णों की
दरमुष्णों ता पौंति पौंति—
को हे खड़ा घूर रही
घृणा ।

घृणा, हृदय को आज—
जीचे लिये जा रही है
उस कर
अहाँ शुद्ध - मायना पर
विष भर विच्छू से

भौतिक जगत के स्वार्थ
रंग जाने बार बार।

बार बार छल जात पायी पल्लवो फा
नहा नम नम फी रसधार—
तन समेट लते

दुनिवार दुर्दम अधम अमानवा वे,
मानव कह मानर र ताल बने तानवों के—
मीरे दा।

वाली, तार बाल ही सडक मी तप्त
अभिशाप्त

आहें भरती है
परिपाटी आज पश्चिम की।

जावन को पीछे मुड़कर
देखन की वान मी है बली जा रही
अजात तरुणाइ जहाँ।

जिस पर चल
आन विफल

भुलस भुलस बार बार
तरुणा के तीव्र-गति गामी चलवे अपार
विल मिलान एक बार।

और, फिर शान्त हा
धुपचाप हान्त हा
हार मान, सुन हा

वैभव के बधन न बँव
युग के प्रति-गामी बन
धिसते चले जाने है
पता का नगर।

घोहर

गटा के जूठे टुकड़ा से नहीं
 चरहे जाते हैं मोटि मोटि क्रांतिकारी कण्ठ ।
 भावना की भिन्नावृत्ति ही बना जहाँ 'कला'
 आग बढ़ने की आन,
 आकुल-भार की लडान—

जहाँ घनी श्रु खला ।

काठरी भैरव तरुण
 खुले वायुमण्डल में
 जैसे मर जाइता है
 तक साध लेत
 नवयुग र प्रति दूदी
 और बना कर लेते
 पशुबल से

बंभस और झूल से
 अपने घर में ही लगी आग को चुगान में—
 लगे जो क्रिया शील हाथ ।

जीवन की ओर से
 यौवन की ओर से
 मोड़े मुख जात जहाँ
 फोड़े मार मार कर
 प्रगति के पग - पग पर
 उगति के हग हग पर
 ढाने जाते रोड़े
 'ओ' धियेर दिये जात शूल ।

शान्त सज्जनता को
 मानव की समता को
 सौंप भी सदा ही रूप जाते लक्ष्य यात्रा है ।
 एसी जगती में प्रेम ।
 प्रेम, तुम परोते धधु ।

पञ्चदश

दुःख तो हृदय में
देर हो पतक जोरणा

जहाँ भी न प्रेम का

सदाभूत रोग का

जब बूढ़ धानो मिले सौभाग्य आया

आर्य अन्तर से

सुखा रह अन्तर से

आप कह रही है पूणा ।

पूणा ! पूणा ! पूणा !

पूणा ! तरो वेग के परिणाम आया

तार तार दाप शिला वी । अन्तर ज्योति यहाँ

पिगक पू आर से

दुःख होता पाश रह दपल

किन्तु अन्तर

अपुराण से

शांति सम्मान से

तप से बलिदान से

शीतल हो

अनिकल अमर राग छेड़ देता ।

आप यहाँ—

बिनाली के बरब से बँधी सी ज्योति—

में है तोड़ने अतुलाप

जहाँ परिवेष पाप गुत्ति को है तीव्र-दाह

जिसने स्पर्श मात्र से

तार तार अन्तर के

एक बाहु भीष्कार करके

सकार

द्विपत्तर

फिर मृत्यु शांति स्वीकार—

करने मन्त्र को

शुभ हो

गौतम हो जाते हैं मृत मत्त ।

उत्तर—

मधुलोभी भँवरों न यहाँ कज्ज कुल्ल

निन्तु यहाँ बन्ने वेदना क गन्दे घूरे पर

सर सफेद-स्वार्थ क धनूरे ही स्थिते हुए

छोल रहे गन्दे मन, मल से मिले दृश्ये

इससे न प्रेम करो ।

इसमें नहीं है रस

विष ही भरा है और ।

इसमें न प्रेम करो

घृणा करो घृणा

घृणा करो अभी अनुगामिनी प्रवृत्तियों से

घृणा करो धार । धाधार ॥ पाप-वृत्तियों से

घृणा करो शाप भरे लोचनों के नीर से

घृणा करो पाप भरी सौम की समीर से

मातृवृत्त मातृ की मृत्यु से घृणा करो

तानवों के दारुण दुष्कृत्य से घृणा करो

बीसवीं सदी में बाधु ।

प्रेम नहीं घृणा करो ।

मृगते सभा है ट है

जोर सच समभन है,

मय म

अनय ने

या सि, अहकार से—

गायतगा विहार म—

किन्तु वह पात नहा

यह नि—

सच म टमागदार आत्मा का ओज लिये

योग लिये दामता का रिक्त रहे हैं गान

गुक्ति की जिशा की आर जोर से बडे हैं गान

नीमर्षी मया व गान।

टागा व गोर गय मरन परिपुष्ट प्राण

भाषा भी न बाँध सकती है इहे लक्ष्मो में

(वैभत्र मी विवेचना जो भावना के व धो म)

ये तो मुक्त लू ट हैं

कडेगे

पुष्ट-पाहनों को—

चर्हा से भी तोड - फोड पायेंगे

वही स आन।

पत्थरों को तोड़ते

गरोड़त से बधना का

भोर भाडिया को

भवभोर कर रूँगे गा

पृग्मता गगति की ओर

जोर से बढ़गे गा

बोसनी सही के गा।

नारी—

नारी !

तुम नारी हो ?

या कि—

क्रांत कामना का क्रान्ति - गयी क्यारी हो ?

निममे विभव का—

भय का

पराभव और—

उद्धम का—

अभिनय सीमा का बल—

जल सा उभर आता

भर आता

भर जाती तुम भी तब

और फूट पड़ती

नचना से विदूषणा था ।

प्याली हो

तबती हुई चाय की प्याली गी

तिरछता

पेड़िला

मुचली जगल-प्याली सो

निमी एक पौने में

आदे भरता हो तुम ।

११—

पिर से भरने का चाह

लेकर हृदय स दा

आह भर

टूट पड़ा बगती परिगे री

इराधी

ीप शिखा पर अज्ञात
गह मिरत ज्योति पर।

निल निमाग दुनिया
तुम नोना नोलनी हो रभी
और कभी तीनों मं मे
एक अपनाती हो
छोकर लगाती और—
शप नोनों को कभी।

तुमका मिला न कृष्ण
थो न तग पर मर्जी
दूसरा का।
गहट ने न्त सी भर भरके रिक्त होती रही
वृणा और प्यार प्राप्त कर रूके मोती रहां
बार बार हार जीत हँस हँसर रोती रहा।
पुर्णता से रिक्त
और रिक्तता का तपित - दान
दत्ता रही जीवन भर—
साधन भी यह ही तुम्हारा है
नारी।—
और यौवन भी यह ही
तुम्हारा काम सुदरी!

हमारे कुछ और प्रगतिशील प्रकाशन

मुक्त-छंद

श्री शिवसिंह 'सरोज' के संपाद्य मुक्त-छंदों का आकर्षक समग्र ।
 इसमें सर्वथा नवीन दृष्टिकोण से प्रभावमयी भाषा में २० वीं सदी
 प्रमुख मान्यताओं के कलात्मक चित्र हैं ।

मौन-निमग्न

प्रसिद्ध तरुण-कथाकार वैकुण्ठनाथ मेहरोत्रा की १५ कलापूर्ण
 कहानियों का समग्र ।

सुन्दर-चित्र

मानव की विविध-प्रवृत्तियों, को प्रेरणा, बल और विवेक प्रदान
 करने वाले सत्कार के प्रसिद्ध महापुरुषों-साहित्यिकों और शूरमाओं
 के वाक्यांशों का समग्र ।

समग्रकर्ता—श्रीहरिचंद्र

अधुरी-साधना

विख्यात सिनेमा साहित्यकार अविनारा की ५ लम्बी मनोरंजक
 और मनोवैज्ञानिक कहानियों का अनुपम समग्र ।

श्रमीरी की सीढ़ी

विकासोन्मुख युवकों को सत्कार की समृद्धि की ओर ले जानेवाले
 प्रेरणा, प्रेरणाओं, विचारों और सक्त्तियों की अनुपम योजनाओं का
 का पृष्टद विवेक भंडार ।

ले० दयाराम जैन

रुन-रुन

आ० इ० रेडियो से ब्राड-कास्ट 'सरोज' के ५० 'सधुर' ममता-पूर्ण
 गीतों का समग्र । जिसमें एक एक गीत जनता के आग्रह पर ६६ बार
 ब्राडकास्ट हो चुके हैं ।

वाल-गीतांजली

पाल-साहित्य की बेजोड़ पुस्तक जिसमें 'सरोज' की सजीव
 लेखनी के ४० गीति चित्र हैं ।

शिशु-बोध

लेखक—पाल-साहित्य के मर्मज्ञ विगेय दयाराम जैन ।

इसमें दृढ़ और चूड़े के आकारों से ही सम्पूर्ण रबर पर्य व्यञ्जनों
 का लिखाया विव्यंजनाया गया है—यह पुस्तक को अग्रिम विशेषता
 है । सर्वथा नये और सुलभ-दृष्टिकोण से विद्या के प्रति
 और धारा बपस परा देने वाली बेजोड़ पुस्तक ।